नवम अध्याय

राधाकृष्णन के शिक्षा दर्शन के अनुसार शिक्षण विधियाँ"

शिक्षण विधि वह साधन है जिससे शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। जैसे शिक्षा के उद्‌दश्य होते हैं, उन्हीं के अनुकूल शिक्षण विधियाँ होती हैं । शिक्षा के उद्‌देश्यों का निर्धारण विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं के आधार पर होता है । विभिन्न प्रकार की दार्शनिक विचारधाराओं के फलस्वरूप शिक्षा जगत में विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों का विकास हुआ है । राधाकृष्णन द्वारा प्रतिपादित विधियों पर विचार करने से पूर्व शिक्षण विधियों के सम्बन्ध में पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोण का अध्ययन करना वांछनीय है ।

9.1 पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षण विधियाँ:

आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार ऐसी शिक्षण विधि होनी चाहिये जिससे बालक की आन्तरिक शक्तियों का पूर्ण विकास हो सके और वह चिरन्तन मूल्यों का साक्षात्कार कर सके । आदर्शवादी शिक्षण अपनी विधि का निर्धारण स्वयं करता है । वह किसी विधि से बंधना पसन्द नहीं करता है । उनका कहना है कि 'हम प्रयोग क्रिया तथा योजना में विश्वास करते

हैं । हमारा आग्रह है कि क्रिया अनेक विधियों में से एक है, कोई विधि नहीं है । बहुत सी विधियाँ हैं, जिनमें से हम उनका चयन कर सकते हैं जो हमारे उद्देश्यों की पूर्ति समय पर सर्वोत्तम ढ़ंग से कर सके ।[1] आदर्शवादी शिक्षा प्रणाली में निर्देश क्रिया और अनुभव पर विशेष बल दिया गया है, निर्देश का आशय शिक्षक निर्देशन से है । क्रिया द्वारा छात्र को शारीरिक एवं मानसिक रूप से सक्रिय रखकर उसे आत्म अभिव्यक्ति की ओर अग्रसर किया जाता है । अनुभव का आशय शिक्षक के द्वारा अपने अनुभवों को बालक के मस्तिष्क में भरना नहीं है अपितु स्वयं बालक के अनुभवों से उसे अन्तर्दृष्टि प्राप्त करानी है । शिक्षक बालकों को जो अनुभव देता है उससे उनकी अन्तर्निहित क्षमताओं की अभिव्यक्ति होती है । इनके आधार पर आदर्शवादी विचारकों ने व्याख्यान, वाद-विवाद, प्रश्नोत्तर, संवाद, सामूहिक चर्चा, महापुरूषों के आचरण का अनुकरण, अभ्यास और आवृत्ति आदि विधियों का प्रयोग किया ।

प्रकृतिवाद के अनुसार अनुभव तथा क्रिया शिक्षा के मूल आधार हैं । बालक को सीखने के लिये प्रेरित करना शिक्षक के लिये अभीष्ठ है । वह बालक के लिये ऐसी व्यवस्था करता है जिससे बालक यह समझता है कि वह खोजकर रहा है । प्रकृतिवाद में शिक्षक की क्रियाशीलता की अपेक्षा बालक की क्रियाशीलता पर विशेष बल दिया गया है । प्रकृतिवादी शिक्षक स्वयं करके सीखने और स्वानुभव पर बल देता है । रूसो के शब्दों में, ' अपने शिष्य को किसी प्रकार का मौखिक पाठ

1- बटलर, जे0 डोनाल्ड: 'फोर फ़िलासफ़ीज़', हारपर एण्ड रॉ पब्लिशर्स, न्यूयार्क, इवेन्टन एण्ड लन्दन, 1957, पृष्ठ 259

न दो, क्योंकि उसे केवल अनुभव द्वारा सीखना है ।[1] इस आधार पर प्रकृतिवादी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षा, खेल द्वारा शिक्षा तथा निरीक्षण द्वारा शिक्षा आदि विधियों का प्रयोग करते हैं ।

प्रयोजनवाद के अनुसार बालक जन्म से ही क्रियाशील होते हैं वे सदैव क्रिया करते हैं और इन क्रियाओं के परिणाम विचारों को जन्म देते हैं । अतः बालकों को स्वयं क्रिया करके अनुभव से सीखने देना चाहिये । ड्यूवी के अनुसार, 'बालक पुस्तक पढ़कर नहीं सीखता अथवा व्याख्यान सुनकर नहीं सीखता --- किन्तु स्वयं को प्रज्जवलित और पोषित करके सीखता है, जिसका आशय क्रिया करने से है ---- हाथ, आंखें, कान, वस्तुतः सारा शरीर सूचना के स्रोत बन जाते हैं, जबकि शिक्षक तथा पाठ्य पुस्तकें क्रमशः आरम्भक एवं परीक्षक ही रहती है[2] प्रयोजनवादियों ने क्रियात्मक स्वानुभाव मूलक और प्रयोगात्मक पद्धतियों को शिक्षण विधियों के क्षेत्र में महत्व दिया है । उनके शिक्षण सम्बन्धी इन सिद्धान्तों पर अनेक विधियों का निर्माण हुआ है । जिनमें किलपैट्रिक की योजना विधि विशेष महत्वपूर्ण है ।

यथार्थवाद में ज्ञाननेन्द्रियों को ज्ञान का द्वार माना जाता है । अतः प्रारम्भ से ही बालक की ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण पर बल दिया जाता है । यथार्थवाद वस्तु को अनुभूति का आधार मानता है । इसलिये यथार्थवादी शिक्षकों ने वस्तुओं को शिक्षा के साधन के रूप में प्रयोग करना आरम्भ किया । उनके अनुसार पदार्थ वास्तविक होते हैं और शब्द उनके प्रतीक । शब्द और पदार्थ को संयुक्त करने से ही अर्थ उत्पत्ति होती है । इसलिये पहले पदार्थ दिखाना चाहिये, फिर उसके लिये शब्द देना चाहिये । इस आधार पर यथार्थवादियों ने निरीक्षण, देशाटन,

---

1- रूसो, जे0जे0: 'एमिल', न्यूयार्क डेन्ट, 1940, पृष्ठ 57

2-ड्यूवी, जॉनः स्कूलस ऑफ टूमारो', डेन्ट एण्ड सन्स, लन्दन, पृष्ठ 80

भ्रमण, दृश्य-श्रव्य साधन, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं आदि पर बल दिया ।

9.2 भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षण विधियाँ:

शिक्षण विधियों के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय शिक्षा-शास्त्रियों का दृष्टिकोण बहुत व्यापक और मनोवैज्ञानिक रहा है । इस सन्दर्भ में अथर्वेद का एक मन्त्र यहाँ पर उल्लेखनीय है ।[1] जिसमें यह कहा गया है कि शिक्षक -शिष्य को दैवीय मन से पढ़ाये और इस प्रकार पढ़ाये कि उसमें रमणीयता रहे और उसे सफलता मिले । इस मन्त्र को ध्यानपूर्वक देखने पर शिक्षण विधियों के सभी पहलुओं का स्पर्श हो जाता है । जैसे शिक्षक की मानसिक स्थिति, दैवीय अर्थात् निर्मल एवं स्वच्छ , शिक्षार्थी की मानसिक स्थिति, प्रसन्नचित्त और शिक्षण का परिणाम, सफलता की प्राप्ति होना चाहिये । उपनिषद साहित्य में श्रवण, मनन, निदिध्यासन, स्मृतिकरण, प्रश्न, अनुप्रश्न, व्याख्या, दृष्टान्त, आख्यायिका, व्युत्पत्ति, सम्वाद विधि, संश्लेषण विधि तथा प्रदर्शन विधि अथवा प्रयोगशाला विधि अथवा प्रत्यक्ष विधि प्रधान रूप में प्रयोग की गई है ।[2] इसके अतिरिक्त उस युग में परिचर्चा विधि, कहानी और नाटक विधियों का भी प्रयोग होता था । न्यायदर्शन में आगमन विधि पर बल दिया जाता था 'हितोपदेश' और 'पंचतन्त्र' की रचना कहानी विधि के द्वारा हुई है । भरत मुनि ने नाटक की उपयोगिता जनमनोरंजन तथा हितोपदेश के लिये प्रतिपादित की है ।

1- वाचस्पते देवन सह । वसोस्पते निरमम ।। (अथर्विद - वाचस्पति सुक्ते)

2- लिकट्टी, आर0एन0आर0 : 'फीचर्स ऑफ उननिषद, मैथोडोलोजी' -ए- कमपरेटिव स्टडी, ऑल इण्डिया ओरियन्टल कान्फ्रेंन्स, 1974, कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी ।

आधुनिक युग में भारतीय शिक्षा शास्त्रियों की शिक्षण विधियों में प्राचीन भारतीय विधियों और नवीन पाश्चात्य विधियों का समन्वय दृष्टिगत होता है । शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित शिक्षण विधियों का मूलोद्गम उपनिषद दर्शन है । उन्होंने उपनिषद वर्णित शिक्षण पद्धतियों को अपने सिद्धान्त के अनुसार विकसित परिवर्धित और परिमार्जित करके प्रस्तुत किया है । उन्होंने श्रवण, मनन, निदिध्यासन, प्रश्नोत्तर, तर्क व्याख्यान, अध्यारोपण, अपवाद दृष्टान्त, कथा-कथन तथा उपदेश विधियों के प्रयोग करने पर बल दिया है । महर्षि दयानन्द ने अधिकांशत: सैद्धान्तिक विधियों के प्रयोग पर ही बल दिया है । वे उपदेश विधि, व्याख्यान विधि, स्वाध्याय विधि, प्रश्नोत्तर विधि, विचार विमर्श विधि के साथ-साथ प्राकृतिक निरीक्षण व परीक्षण पर भी बल देते हैं । स्वामी विवेकानन्द मन की एकाग्रता को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं । उनके अनुसार मन की एकाग्रता ही शिक्षा का सम्पूर्ण सार है । इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द व्याख्यान विधि, निरीक्षण विधि तथा अनौपचारिक शिक्षण विधि को प्राथमिकता देते हैं । तथा शिक्षा ग्रहण करने की मूल शक्ति ब्रहमचर्य को मानते हैं । जिससे एकाग्रचित होने की शक्ति प्राप्त होती है । वे बालक को स्वतंत्रता प्रदान करते हैं । इस प्रकार मनोवैज्ञानिक पक्ष को भी ध्यान में रखते हैं । रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार शिक्षण विधि को वास्तविकताओं पर आधारित होना चाहिये । उनके अनुसार जहाँ तक सम्भव हो इतिहास, भूगोल आदि का शिक्षण प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा ही प्रदान किया जाना चाहिये । निरीक्षण, भ्रमण, दृश्य दर्शन आदि विधियों के द्वारा बालकों को प्रत्यक्ष अनुभव कराये जाने चाहिये । वे पुस्तक केन्द्रित शिक्षा की आलोचना करते हैं और शिक्षण में क्रिया सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं । महर्षि अरविन्द के अनुसार शिक्षा को मनुष्यों में पहले से ही सुप्त शक्तियों का अनावरण और विकास करना है । अत: उन्होंने ऐसी ही

शिक्षण विधियों पर बल दिया जो बालक की सुप्त शक्तियों को जागृत करती हैं । उन्होंने वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग पर बल दिया जिससे बालक स्वयं अपने प्रयत्नों द्वारा अपनी क्षमताओं का विकास कर सके । निरीक्षण तथा परीक्षण पर उन्होंने अधिक बल दिया और परम्परागत पाठ्य पुस्तक विधि की आलोचना की । गाँधी जी पुस्तकीय शिक्षा के स्थान पर व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करने पर बल देते हैं तथा किसी एक शिल्प को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाते हैं । उनका विश्वास है कि मस्तिष्क की सच्ची शिक्षा शरीरिक अंगों- हाथ, नाक, कान, आदि के उचित अभ्यास और परीक्षण से प्राप्त की जा सकती है । वे बालकों को लिखना, सिखाने से पहले पढ़ना और वर्णमाला सिखाने से पहले रेखायें खींचना अर्थात् ड्राइंग का अभ्यास कराना चाहते हैं । गाँधी जी का विचार है कि जो ज्ञान बालक अपने स्वयं के अनुभव द्वारा प्राप्त करता है वह अति स्थाई और उपयोगी होता है । बालक इस ज्ञान का व्यवहारिक जीवन में सफलतापूर्वक स्थानान्तरण कर सकते हैं । उन्होंने विचार, वाचन और कर्म द्वारा सीखने पर बल दिया है । यदि इन तीनों क्रियाओं में से किसी का भी अभाव रहता है तब वह अस्थायी और अनुपयोगी होगा । इस प्रकार गाँधी जी ने पाठ्यपुस्तक व व्याख्यान आदि परम्परागत विधियों को अनुपयुक्त बताया और क्रियात्मक पद्धति पर बल दिया ।

9.3 राधाकृष्णन के शिक्षा दर्शन के अनुसार शिक्षण विधियाँ:

राधाकृष्णन ने अपने शिक्षा दर्शन की संकल्पना के अनुरूप शिक्षण विधियों का निर्धारण किया है । शिक्षा के उद्देश्य जितने श्रेष्ठ और उच्च होते हैं उनकी प्राप्ति के लिये उतनी ही श्रेष्ठ और उच्च शिक्षण विधियों की आवश्यकता होती है । राधाकृष्णन द्वारा निर्धारित शिक्षा के उद्देश्यों और विधियों में कहीं भी असामञ्जस्य दिखाई नहीं पड़ता । सामान्यतः यह

प्रश्न पूछा जाता है कि क्या यह शिक्षक का उत्तरदायित्व है कि वह विद्यार्थी के मस्तिष्क को अपनी इच्छाओं के अनुरूप ढ़ाले ? या उसे अपनी प्रकृति के अनुरूप विकसित होने के लिये अकेला छोड़ दें । शिक्षा के इतिहास में दोनों ही विचारो को स्वीकार किया गया है । इस विषय में भगवतगीता उचित मार्ग दिखाती है जिसे राधाकृष्णन ने अपने एक व्याख्यान में उद्धृत किया है - 'हमें विद्यार्थी के समक्ष किसी विषय पर सर्वोतम विचार प्रस्तुत करने चाहियें और फिर उसकी व्याख्या करने तथा निर्णय करने के लिये उनको स्वतंत्र छोड़ देना चाहिये । - ' यथा इच्छारी तथा कुरू । यह सिद्धान्त चाहता है कि हम अपनी स्वतंत्रता और मस्तिष्क की एकाग्रता को जन संचार के साधनों - रेड़ियो, सिनेमा और प्रेस के हमले से बचायें । हमारे ऊपर पड़ने वाले प्रभाव के सूक्ष्म परीक्षण और समालोचना की आवश्यकता है जिससे कोई भी विद्यार्थी यन्त्र मानव या मशीन न बने ।[1] राधाकृष्णन शिक्षण विधियों के अन्तर्गत अध्ययन, श्रवण, चिन्तन, मनन, निदिध्यासन, अन्तर्ज्ञान, प्रश्नोत्तर, तर्क, व्याख्या, दृष्टान्त, अनुकरण, प्रत्यक्षण, अभ्यास कार्य, निरीक्षण प्रयोग तथा प्रकृति व समाज के सम्पर्क को बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं ।

अध्ययन:

बौद्धिक पूर्णता को संरक्षित रखने का सर्वोत्तम उपाय शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन करना और ध्यानयोग करना है । राधाकृष्णन कहते हैं कि हमें अपने बालकों में अध्ययन की आदत को विकसित करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये ।[2] अध्ययन की आदत को उच्च स्तर

1- एस0राधाकृष्णन:'ओकेज़नल स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स', पब्लिकेशन गवनमैन्ट ऑफ इण्डिया, 1960, पृष्ठ 247

2- पब्लिकेशन्स डिवीजन, गर्वनमैन्ट ऑफ इण्डिया : 'प्रेसीडेन्ट राधाकृष्णनस स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स,' 1969, पृष्ठ 21।

की पुस्तकों, शास्त्रों और ग्रन्थों के अध्ययन से विकसित किया जा सकता है । राधाकृष्णन का कहना है कि एक सच्चा शिक्षित व्यक्ति वह है जो अध्ययन प्रेमी हो । अतः शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थियों को अध्ययन करने के अधिकाधिक अवसर प्रदान करें ।

श्रवण :

शिक्षा प्राप्ति में शास्त्र और शिक्षक का प्रवचन तथा शिक्षार्थी की मानसिक तत्परता बहुत आवश्यक है । उसकी प्रथम स्थिति सुनने की होती है । शिक्षक के प्रवचन को शान्तिपूर्वक और श्रद्धापूर्वक सुनना ही श्रवण विधि के अन्तर्गत आता है । सुने हुये विषय पर युक्तिपूर्वक विचार करके शिक्षार्थी बाद में मनन किये हुये पर स्थिर हो जाता है ।[1] राधाकृष्णन के अनुसार जो शिक्षक विद्यार्थी को ज्ञान कराना चाहता है, उसे विद्यार्थी में एकाग्रचित्त होकर ध्यान पूर्वक सुनने के लिये प्रेरित करना चाहिये ।

मनन :

मनन का अर्थ विचार करना होता है । शिक्षार्थी सुने हुये तक सीमित रहकर पूर्व ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता । श्रवण, मनन की पूर्व भूमिका है । विद्यार्थी शिक्षक के किसी विषय को सुनकर तब तक सन्तुष्ट नहीं हो सकता जब तक कि वह स्वयं युक्ति या तर्क द्वारा सुने हुये पर विचार नहीं कर लेता । राधाकृष्णन का विचार है कि केवल श्रवण एवं अध्ययन से तथ्य एकत्र किये जा सकते हैं लेकिन उनका समझना भी आवयश्क है और ज्ञान को समझने के लिये उसे युक्ति युक्त ढंग से परखना आवश्यक है । शिक्षार्थी को अनेक प्रकार की

1- मुखर्जी, आर0के0, 'एन्सियन्ट इण्डियन एजुकेशन', एस0एल0जैन0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1960, पृष्ठ 3।

शंकाएं हो सकती हैं । शिक्षक के साथ-साथ विचार विमर्श के द्वारा ही इन शंकाओं का निवारण किया जा सकता है । विद्यार्थी परस्पर विचार विमर्श द्वारा भी संचित ज्ञान का अवबोध कर सकते हैं ।

निदिध्यासन:

जो प्रत्यय निर्मित हुये हैं तथा जो जो अवबोध बन पाये हैं, उन पर पुनः विचार करना आवश्यक है । निदिध्यासन के अन्तर्गत प्राप्त ज्ञान का जीवन में उपयोग करना भी निहित रहता है । मौखिक ज्ञान व्यक्तित्व का अंग बन जाना चाहिये , इसी अवस्था को निदिध्यासन की अवस्था कहा जाता है ।[1] जिस प्रकार श्रवण की प्रक्रिया छात्र में मनन का उत्प्रेरण करती है, उसी प्रकार मनन विद्यार्थी को निदिध्यासन की ओर उन्मुख करता है । यह बोध की वह अवस्था है जहाँ व्यक्ति का निश्चय स्थिर हो जाता है । उसका ध्यान परिपक्व हो जाता है । यह शिक्षण की वह प्रक्रिया है, जिसका आरम्भ छात्र की श्रवण क्रिया से होता है और मनन जिसका मध्य होता है तथा जो निदिध्यासन तक पहुंच कर पूर्ण हो जाती है । इस स्तर पर पहुंच कर शिक्षार्थी का बोध पूर्ण विकसित हो जाता है । राधाकृष्णन ने बार-बार मनन को मानवीय ज्ञान के रूपान्तर के लिये कुछ एकांकी क्षणों की आवश्यकता पर बल दिया है । उन्होंने कहा कि ' एक विद्यार्थी के मन में इस भावना को जागृत करना अत्यन्त आवश्यक है कि

1- ओड ,एल0 के0 (यू0के0) 'शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठ भूमि', राजस्थान हिन्द ग्रन्थ एकादमी, जयपुर, 1983, पृष्ठ 204

उसके लिये कुछ शान्त क्षणों की अत्यधिक आवश्यकता है । इन शान्त क्षणों की आवश्यकता है हृद्य और आत्मा की शुद्धता और पवित्रता के लिये तथा अपने से सम्पर्क करने के लिये जिससे वह अपने विचारों का संचयन कर सके, अपने व्यक्तित्व को एकीकृत कर सके और उसकी खोज कर सके ।[1]

यह शान्त क्षण विद्यार्थी को पुस्तकों से प्राप्त किये हुये ज्ञान को व्यावहारिक जीवन में प्रयोग में लाने में सहायता करते हैं । विद्यार्थी पुस्तकों से ज्ञान तो प्राप्त कर लेते हैं लेकिन यह ज्ञान उनके अस्तित्व का, उनकी प्रकृति का भाग नहीं बन सकता, उनका रूपान्तरण नहीं कर पाता, बोध का पूर्ण विकास नहीं हो पाता और उसे सत्यानुभूति नहीं हो पाती । इस रूपान्तर के लिये राधाकृष्णन कहते हैं कि कुछ क्षणों के लिये शान्त बैठकर यह जानने का प्रयत्न करना चाहिये कि जो ज्ञान हमने पुस्तकों से प्राप्त किया है, वह रूपान्तरित हुआ है या नहीं । 'तेजस्विन्म मधुतम्रस्ते ' । जो ज्ञान तुम प्राप्त करों, वह ज्ञान प्रकाशवान बने, वह तुम्हें पूरी तरह परिवर्तित कर दें । इसके लिये केवल अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है अपितु कुछ और भी महत्वपूर्ण है और वह है एकान्त के कुछ क्षण ।[2]

वस्तुतः श्रवण, मनन, निदिध्यासन अलग-अलग तीन विधियाँ नहीं है वरन् ये तीनों एक ऐसी समग्र विधि के अंग है जिससे सत्यानुभूति होती है । श्रवण, मनन, निदिध्यासन में मुख्यतः छात्र सक्रिय और विचारशील रहता है । शिक्षक से श्रवण करने के पश्चात् उसे ही

1- राबर्ट, ए0 मैक्डरमोट (एडिटर) 'बेसिक राइटिंग्स ऑफ एस0 राधाकृष्णन', जयको पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, इण्डिया, 1977, पृष्ठ 50

2- पब्लिकेशनस डिवीजन, गवेनमैन्ट आफ इण्डिया: 'प्रेसीडेन्ट राधाकृष्णनस स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स,' 1965, पृष्ठ 181

मनन करना होता है और वही निदिध्यासन की स्थिति को प्राप्त करता है । इस प्रकार श्रवण विधि में विद्यार्थी के निष्क्रिय श्रोता होने पर भी मनन तथा निदिध्यासन में उसकी सक्रियता इस विधि को छात्र केन्द्रित होना प्रकट करती है । आधुनिक शिक्षा विज्ञान भी ऐसे शिक्षण पर बल देता है, जिससे छात्र की तर्क शक्ति का विकास होता है और उसमें निर्णय की क्षमता दृढ़ होती है ।

दृष्टान्त (उदाहरण विधि) :

दृष्टान्त या उदाहरण का तात्पर्य उस निर्देशन सामग्री से है जिसकी सहायता से पाठ्य सामग्री को रोचक, बोधगम्य तथा स्पष्ट किया जाता है । दृष्टान्त अथवा उदाहरण के द्वारा शिक्षक, महत्वपूर्ण विचारों एवं दुरुह स्थलों को सुविधापूर्वक तथा प्रभावशाली ढ़ंग से स्पष्ट कर देता है । इस विधि के सहारे विद्यार्थी को नवीन ज्ञान सरलता से प्रदान किया जा सकता है राधाकृष्णन ने कहा कि नैतिक आदर्शों की शिक्षा, निर्देशन और वास्तविक उदाहरण के द्वारा देनी चाहिये ।

व्याख्यान विधि:

शिक्षण विधियों में व्याख्यान भाषण या कथन विधि सबसे लोकप्रिय विधि है । इस विधि में किसी विचार अथवा तथ्य को स्पष्ट करने के लिये लम्बी अथवा छोटी व्याख्या का सहारा लिया जाता है । इसमें शिक्षक विषय सम्बन्धी तथ्यों को क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित करके शाब्दिक चित्र खींचता है । यह एक प्राचीन और परम्परागत विधि है । यह विधि शिक्षक की कार्यकुशलता और दक्षता पर निर्भर करती है सभी अध्यापक इस विधि में पूर्ण सफल नहीं हो

सकते । इस विधि में छात्रों का स्थान गौण होता है । वे निष्क्रिय से शिक्षक के भाषण को शान्त रहकर ध्यानपूर्वक सुनते रहते हैं और व्याख्यान की महत्वपूर्ण बातों को उत्तर पुस्तिकाओं में लिखते रहते हैं । राधाकृष्णन का कहना है कि व्याख्यान विधि का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि व्याख्यान न केवल विद्यार्थियों की परिचित भाषा में दिया जाये वरन् भाषणकर्त्ता का ध्यान छात्रों की ओर होना चाहिये । उसे यह देखना चाहिये कि किस सीमा तक विद्यार्थी उसके विचारों को समझ रहे हैं और अन्त: क्रिया कर रहे हैं ।[1] शिक्षकों को विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये । विषयवस्तु विद्यार्थियों की रूचि और मानसिक स्तर के अनुसार संगठित होनी चाहिये । व्याख्यान के अनन्तर शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों से विषय के महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रश्न पूछने चाहियें और उनको श्यामपट्ट पर लिखना चाहिये ।[2]

निरीक्षण विधि:

निरीक्षण विधि वह विधि है जिसमें किसी वस्तु या तथ्य का स्वयं निरीक्षण करके पता लगाया जाता है । इसके द्वारा व्यक्ति अपने आस-पास की बहुत सी वस्तुओं व परिस्थितियों का निरीक्षण करके बहुत सी नई-नई बातों का ज्ञान सहज ही में प्राप्त कर लेता है जिस ज्ञान का बालक अपने स्वयं के प्रयत्नों से इधर-उधर घूम फिर कर निरीक्षण के द्वारा ग्रहण करता है । वह उसके मस्तिष्क का स्थायी अंग बन जाता है । इस विधि में बालक

1- 'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 103

2- वही, पृष्ठ 103

स्वतन्त्र रूप से देखना, सोचना और अपने विचारों को प्रकट करना सीख जाते हैं और बालक सक्रिय रहते हैं । वे अपने अनुभवों द्वारा प्राप्त किये गये ज्ञान को स्थायी रूप देने में सफल हो जाते हैं । यद्यपि इस विधि में प्राय: अनावश्यक बातों के निरीक्षण में अधिक समय नष्ट होता है परन्तु यदि शिक्षक योग्य, अनुभवी और चतुर है तो वह विधि का सफलतापूर्वक प्रयोग करके बालकों को विभिन्न वस्तुओं तथा घटनाओं का ज्ञान उनके निरीक्षण द्वारा सहज में ही करा सकता है । राधाकृष्णन ने शिक्षकों द्वारा निरीक्षण विधि के प्रयोग करने पर विशेष बल दिया है

प्रयोग विधि:

प्रयोग विधि उस विधि को कहते हैं जिसमें बालक ज्ञान को प्रयत्नों की सहायता से प्रयोग द्वारा स्वयं प्राप्त करता है । इस विधि में करके सीखने के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया जाता है । इस विधि द्वारा शिक्षण करते समय शिक्षक बालकों के मस्तिष्क में बलपूर्वक ठूँसता नहीं है अपितु उन्हीं के प्रयत्नों की सहायता से प्रयोग द्वारा नवीन ज्ञान को खोजने की प्रेरणा देता है । इस विधि में बालक शारीरिक तथा मानसिक रूपसे क्रियाशील रहते हैं । जो ज्ञान वे स्वयं के प्रयत्नों से सीखते हैं वह मस्तिष्क का स्थायी अंग बन जाता है । ज्ञानार्जन में रूचि बनी रहती है और उसमें वैज्ञानिक चिन्तन तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है । राधाकृष्णन ने शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिये प्रयोग विधि को विशेष महत्व प्रदान किया

अभ्यास कार्य :

अभ्यास कार्य का अर्थ किसी सीखे हुये कार्य अथवा कौशल अथवा पढ़ी हुई

सामग्री का नई-नई परिस्थितियों में प्रयोग करना है । अभ्यास कार्य के द्वारा शिक्षक को इस बात का पता लग जाता है कि शिक्षण के जिस उद्देश्य को ध्यान में रखकर शिक्षण किया गया है वह उद्देश्य प्राप्त हुआ अथवा नहीं अर्थात् अभ्यास कार्य की सहायता से सीखा हुआ ज्ञान स्थायी एवं दृढ़ हो जाता है । राधाकृष्णन अभ्यास कार्य को महत्वपूर्ण मानते हैं । उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि विश्वविद्यालय के समस्त पाठ्यक्रमों में शिक्षकों को प्रत्येक विद्यार्थी के कुछ लिखित कार्य का समयानुसार पाक्षिक या साप्ताहिक रूप से निरीक्षण अवश्य करना चाहिये ।[1]

अनुवर्ग शिक्षण :

अनुवर्ग शिक्षण मूल्यवान शैक्षिक अनुभव प्रदान करने की विधि है । इस विधि के द्वारा विद्यार्थियों को विविध प्रकार के अनुभव प्रदान किये जाते हैं । कक्षा को छोटे-छोटे सजातीय वर्गों में बांट दिया जाता है । एक अनुवर्ग का प्रभारी एक शिक्षक होता है । वह शिक्षक अपने अनुवर्ग की सभी अध्ययन सम्बन्धी कठिनाईयों के समाधान में सहायता करता है । उसका कार्य विद्यार्थियों को परामर्श तथा निर्देशन प्रदान करना है । इसमें छात्रों की व्यक्तिगत भिन्नता को महत्व दिया जाता है । राधाकृष्णन के अनुसार अनुवर्ग शिक्षण का मुख्य उद्देश्य एक प्रकार का बौद्धिक व्यायाम है । वे कहते हैं कि इस विधि के द्वारा शिक्षक, विद्यार्थियों की

1-'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 104

चिन्तन प्रक्रिया को विकसित और निर्देशित करता है जो कि उसकी स्वयं की एक क्रिया होनी चाहिये । इसमें शिक्षक विद्यार्थियों के अध्ययन क्षेत्र के चयन करने, व्याख्यानों को सुनने और उनके अध्ययन से सम्बन्धित व्यावहारिक प्रश्नों के विषय में आवश्यक परामर्श देता है । अनुवर्ग शिक्षण को व्याख्यान विधि की पूरक और सहायक प्रविधि के रूप में प्रयुक्त किया जाता है ।[1]

अनुवर्ग शिक्षण भारत के कुछ ही महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में प्रचलित है । कुछ ही स्थानों पर यह अपने सही रूप में मिलता है जबकि अन्य स्थानों पर 20 और 25 विद्यार्थियों के द्वारा एक अनुवर्ग का निर्माण किया जाता है जो कि एक अनुवर्ग न होकर एक कक्षा का रूप ही होता है । वस्तुतः विद्यार्थियों से अधिक के समूह में अनुवर्ग शिक्षण सम्भव नहीं है । लेकिन अधिकतर महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अनुवर्ग शिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है । यह एक गंभीर दोष है और जिसको शीघ्र से शीघ्र दूर किया जाना चाहिये । हमको अनुवर्ग शिक्षण में छात्रों की उपस्थिति को व्याख्यानों की तरह अनिवार्य बनाना चाहिये ।[2] आदर्श परिस्थितियों में केवल उन्हीं अनुभवी शिक्षकों को जो अत्यधिक विद्वान हों और जिनका अनुवर्ग शिक्षण के प्रति झुकाव और लगाव हो, को इस कार्य का उत्तरदायित्व दिया जाना चाहिये और उन पर अन्य कार्यों का भार नहीं होना चाहिये । सभी स्नातक कक्षाओं में अनुवर्ग शिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये । [3]

1- 'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन', 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 107

2- वही, पृष्ठ 107

3- वही, पृष्ठ 108

इस प्रकार राधाकृष्णन ने प्राचीन विधियों जैसे अन्तर्ज्ञान, चिन्तन, योगाभ्यास के साथ नवीन विधियों जैसे निरीक्षण प्रयोग आदि को समान महत्व प्रदान किया है ।

विचार-गोष्ठी:

विचार गोष्ठी अनुदेशन की ऐसी विधि है जिससे चिन्तन स्तर के अधिगम के लिये अन्तः प्रक्रिया की परिस्थिति उत्पन्न की जाती है । इस प्रविधि के प्रयोग से ज्ञानात्मक और भावनात्मक उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है इस प्रविधि के उपयोग से ऐसी परिस्थितयां उत्पन्न की जाती है जिससे विद्यार्थियों में विश्लेषण, संश्लेषण, आलोचनात्मक क्षमताओं और मूल्यांकन की योग्यता का विकास होता है । निरीक्षण और अनुभवों के प्रस्तुतीकरण की क्षमताओं का विकास होता है । भावनात्मक स्थिरता का विकास होता है और दूसरे व्यक्तियों के विचारों व भावनाओं के प्रति सम्मान की भावना का विकास होता है । ज्ञानात्मक और भावनात्मक उद्देश्यों के अतिरिक्त विचार गोष्ठी से विद्यार्थी में अपने दृष्टिकोण को रखने, स्पष्टीकरण करने, प्रश्न पूछने, उत्तर देने और तर्क करने के सन्तुलित ढ़ंग का विकास होता है । राधाकृष्णन ने उच्च स्तर पर शिक्षण की विभिन्न प्रविधियों के प्रयोग पर बल दिया है । उनके अनुसार स्नातकोत्तर स्तर पर विचार गोष्ठी का आयोजन करना अत्यन्त आवश्यक है । इसका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में विचार विनिमय की क्षमता को उद्दीप्त करना, विषय को स्पष्ट करना और सामूहिक विधि के द्वारा सत्य तक पहुंचना है । इस विधि में विद्यार्थी और शिक्षक सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं ।[1]

1-'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 109-110

9.4 पुस्तकालय:

पुस्तकालय विद्यालय का हृद्‌य है । विद्यार्थी यहां पर विभिन्न अनुभव, समस्यायें तथा प्रश्न लेकर आते हैं और तब उन पर विचार विमर्श करते हैं और दूसरों के अनुभवों तथा संग्रहित विद्वता के माध्यम से नवीन ज्ञान की खोज करते हैं । पुस्तकालय शैक्षिक कार्यक्रम से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है । इनको शैक्षिक कार्यक्रम का एक अंग मानना उपयुक्त होगा । पुस्तकालय को विद्यालय के एक सहायक अंग के रूप में ही ग्रहण नहीं किया जाना चाहिये वरन् इनको एक अनिवार्य सेवा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये । यह अपने उच्चतम महत्व को तभी प्राप्त कर सकते हैं जब ये विद्यार्थी को शिक्षा देने के लिये मुख्य साधन के रूप में कार्य करें । अब पुस्तकालय को विद्यालय की बौद्धिक प्रयोगशाला के रूप में देखा जाता है । विश्वविद्यालय में प्रत्यक्ष रूप से जहां तक शोधकार्य की बात है और अप्रत्यक्ष रूप से जहां तक शैक्षिक कार्य की बात है, यह अपना जीवन पुस्तकालय से प्राप्त करते हैं । वैज्ञानिक शोध के लिये पुस्तकालय के साथ-साथ प्रयोगशाला की भी आवश्यकता होती है जबकि मानविकी शोध के लिये पुस्तकालय ही प्रयोगशाला के रूप में कार्य करते हैं । विश्वविद्यालय वैज्ञानिक और मानविकी के अध्ययन के लिये एक उच्च स्तरीय पुस्तकालय का होना अत्यन्त आवश्यक है ।[1]

राधाकृष्णन ने अनुभव किया कि भारत के कुछ ही विश्वविद्यालयों में पुस्तकालयों की स्थिति उच्च स्तर की है । वहाँ उत्तम पुस्तकें हैं, रख रखाव की उत्तम व्यवस्था है, विद्यार्थी और शिक्षकों को पुस्तकें उपलब्ध कराने की श्रेष्ठ व्यवस्था है और व्यवस्थित

1- 'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 110

अध्ययन कक्ष है लेकिन अधिकांश विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में पुस्तकालयों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है , वहाँ न उच्च कोटि की और नये संस्करणों की पुस्तकें हैं न पुस्तकों को रखने की कोई व्यवस्था है न ही महत्वपूर्ण शोध पत्र-पत्रिकाएं आती हैं और न ही उनको व्यवस्थित रूप से रखा जाता है, लेकिन पुस्तकालयों की सबसे दयनीय स्थिति चिकित्सा, यान्त्रिकी और कृषि जैसी व्यवसायिक शिक्षा संस्थाओं की है । अधिकतर पुस्तकालयों में हस्तलिखित पुस्तकों का अभाव है ।[1] राधाकृष्णन ने पुस्तकालय व्यवस्था को सुधारने पर बल देते हुये कहा है कि पुस्तकालयों के लिये वार्षिक अनुदान बहुत कम है इसको बढ़ाया जाना चाहिये । प्रत्येक विश्वविद्यालय में खुली अलमारी पद्धति की सुनियोजित व्यवस्था होनी चाहिये । पुस्तकालयों में प्राचीन हस्तलिखित पांडुलिपि को सुरक्षित रखा जाना चाहिये और इनके लिये एक विशेष धनराशि निर्धारित की जानी चाहिये । पुस्तकालय प्रत्येक दिन व अवकाश के दिन भी बारह घन्टे खुला रहना चाहिये । जिससे शिक्षक और शिक्षार्थी अध्ययन और शोध में अधिकाधिक समय लगाकर उपयोग कर सकें । पुस्तकालयों का संगठन व्यवस्थित होना चाहिये । एक व्यापक और सम्पन्न केन्द्रीय पुस्तकालय के साथ-साथ विभागीय पुस्तकालयों की व्यवस्था होनी चाहिये । पुस्तकालयों के कर्मचारी योग्य और पूर्ण प्रशिक्षित होने चाहिये ।[2]

9.5 प्रयोगशालायें:

वैज्ञानिक प्रवृत्ति ने प्रयोगशालाओं की आवश्यकता पर बल दिया है । राधाकृष्णन यह अनुभव करते हैं कि भारत की शिक्षा संस्थाओं में प्रयोगशालायें उच्च स्तर की और

1- 'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 110

2- वही, पृष्ठ 116

उपयोगी नहीं है । प्रयोगशालाओं के भवनों का निर्माण व्यवस्थित रूप से नहीं किया गया । उनमें विद्युत स्वच्छता और जल आदि की समुचित व्यवस्था का अभाव है । उनकी साज-सज्जा दोषपूर्ण है, आवश्यक फर्नीचर, उपकरणों और शैक्षिक सामग्री का अभाव है । राधाकृष्णन कहते हैं कि विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में भौतिक विज्ञान रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान और अन्य विषयों की प्रयोगशालाओं का निर्माण व्यवस्थित और सुनियोजित ढंग से किया जाना चाहिये ।[1] राधाकृष्णन के अनुसार अधिकांश शिक्षा संस्थाओं के विज्ञान के शिक्षक प्रयोगशालाओं में साधनों और उपकरणों के अभाव का अनुभव करते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि वैज्ञानिक विषयों के आधुनिक शिक्षण और शोध के लिये पर्याप्त साधन और उपकरणों की आवश्यकता है, जो अत्यधिक महंगे भी हो सकते हैं । इनकी उपलब्धता तभी संभव हो सकती है जब इस कार्य के लिये पर्याप्त धन और अनुदान की व्यवस्था की जाये । अतः इस हेतु अनुदान की धनराशि को बढ़ाया जाना चाहिये और इन पर शीघ्रता में किये जाने वाले व्यय पर रोक लगायी जानी चाहिये । प्रयोगशालाओं के लिये आवश्यक साधन और उपकरण का चयन अत्यन्त सावधानी के साथ किया जाना चाहिये । 2

9.6 राधाकृष्णन के अनुसार अनुशासन की संकल्पना :

जीवन के स्थायी एवं उत्कृष्ट मूल्यों की प्राप्ति हेतु अनुशासन अत्यन्त आवश्यक है इसीलिये भारतीय परम्परा में शिक्षा या विद्या उसे कहा जाता था जिसके द्वारा व्यक्ति में

1- 'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 114

2- वही, पृष्ठ 114

अनुशासन उत्पन्न हो । इस सन्दर्भ में संस्कृत की बहुचर्चित उक्ति, 'विद्या ददाति विनयं' का महत्व सहज ही आंका जा सकता है । अनुशासन एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति का व्यवहार संयत, अनुशासित, कल्याणकारी, सत्यपूर्ण और नियमित होता है और उसमें सदाचरण तथा समाज सम्मत, सर्वोत्कृष्ट गुणों को अर्जित करने की क्षमता पैदा होती है । राधाकृष्णन अनुशासन को एक सार्वभौमिक समस्या मानते हैं । उनके अनुसार मानव स्वभाव राष्ट्रीय सीमाओं को नहीं जानता । सूर्य कभी भी आचरण की समस्याओं पर अस्त नहीं होता । कुछ युवक घर में और विद्यालयों में अपने आचरण से माता-पिता और शिक्षकों के लिये समस्यायें उत्पन्न करते हैं । अतिरिक्त ऊर्जा का उचित प्रयोग न होने, दुस्साहस, आलस्य और बुरी भावनाएं युवकों को अनियमित व्यवहार और अनुशासनहीनता पैदा करने के लिये प्रेरित करती है यद्यपि अनुशासनहीनता की समस्या विद्यालय जीवन की बहुत ही सामान्य समस्या है । किन्तु भारत के विभिन्न भागों में इसके स्वरूप में व्यापक अन्तर पाया जाता है ।[1]

अनुशासनहीनता के लिये राधाकृष्णन विद्यार्थियों को उत्तरादायी नहीं मानते । उनका कहना है कि' मैं अपने जीवन में चालीस वर्षों से भी अधिक समय तक शिक्षक रहा हूँ । मैं आपको बताना चाहता हूँ कि हमारे छात्रों में कोई मौलिक त्रुटि नहीं है । मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि हम उनको वे अवसर नहीं दे रहे हैं, जो उनको मिलने चाहिये ।[2] विश्वविद्यालय

1- 'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 379

2- एस0 राधाकृष्णन : 'नवयुवकों से ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 70

शिक्षा आयोग के अनुसार अनुशासनहीनता के बहुत से कारण हैं, लेकिन उनमें मुख्य हैं - धनाभाव और अन्य भौतिक सुविधाओं का अभाव । जो स्वस्थ और सम्पन्न विद्यालय जीवन के लिये आवश्यक है । पर्याप्त छात्रावासों और उनमें रहने की सुविधाजनक स्थितियों का अभाव, खेल के मैदानों और विद्यार्थियों का सामुहिक क्रियाओं का अभाव, विद्यार्थियों की अत्यधिक संख्या का होना अभिभावकों का शिक्षा संस्थाओं के अधिकारियों को पूर्ण सहयोग और समर्थन न देना, योग्यता के आधार पर विद्यार्थियों को प्रवेश न मिलना, सफल अध्ययन के लिये विद्यार्थियों द्वारा कठिन परिश्रम न कराना, परीक्षाओं, जो दुर्भाग्य से शिक्षा प्रणाली को पूर्ण रूप से प्रभावित किये हुये हैं, के विषय में विद्यार्थियों का तनाव, शिक्षा प्राप्त करने के लिये निर्धन विद्यार्थियों की आर्थिक चिन्ता । ये सभी कारण विद्यार्थियों के कल्याण और उत्तम व्यवहार में बाधाएं उपस्थित करते हैं ।[1]

राधाकृष्णन के अनुसार, 'यह बात भी है कि कक्षाओं में छात्रों की संख्या बहुत होती है । जिस कक्षा में लगभग 150 व्यक्तियों के बैठने का स्थान हो सकता है उसको 500 व्यक्तियों के बैठने के योग्य समझ लिया जाता है अनुशासनहीनता के अतिरिक्त और कौन सी चीज है, जिसे हम ऐसी कक्षाओं में प्रोत्साहित करते हैं । जितनी जगह में केवल 150 छात्र आ सकते हैं, उसमें कितनी भी भीड़ -भाड़ करके हम 500 छात्रों को कैसे बैठा सकते हैं? यह असंभव है फिर पाठ्यतत्र प्रवृत्तियों की क्या व्यवस्था है ? अधिकांश महाविद्यालयों में, जिनमें छात्रों की

1- 'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 380

अधिक भीड़-भाड़ रहती है अध्यापक तो कम होते हैं और उनके अन्तर्गत बहुत से ऐसे स्वतंत्र कलात्मक भावनात्मक या बौद्धिक कार्य-कलाप भी नहीं संयोजित होते जिनमें छात्र अपनी अभिव्यक्ति के अवसर पा सकें । दूसरे शब्दों में कहें तो जब तक व्यक्ति के पूर्ण व्यक्तित्व को अभिव्यक्त होने का क्षेत्र नहीं मिलता, तब तक हमारे महाविद्यालय या विश्वविद्यालय व्यर्थ सिद्ध होगें । मुझे ज्ञात है कि कुछ घटनाऐं ऐसी हुई हैं जिनसे लडकों के नैतिक और आध्यात्मिक अद्यपतन का पता चलता है । यदि हम अपने देश के भविष्य को संकट में नहीं ड़ालना चाहते तो सबसे पहले हमारा ध्यान शिक्षा की ओर जाना चाहिये । जिन व्यक्तियों को हम शिक्षा दे रहे हैं यदि वही ओछे और क्षुद्र मन वाले निकले, तो हम देश के आर्थिक जीवन के पुनर्वास के लिये चाहे जितने विशालकाय बांध बना डाले सब निरर्थक रहेगें । जब तक लोग स्वयं विशाल हृदय वाले नहीं हो जाते, उनकी बुद्धि प्रखर नहीं हो जाती, उनके मन संस्कृत नहीं होते, तब तक वे उन सभी सुविधाओं तथा सुखों का सम्यक उपयोग नहीं कर सकते, जिनको हम उपभोग के लिये उनके सम्मुख प्रस्तुत करते हैं । जब तक हम अपने मन में परिवर्तन नहीं करते तब तक वातावरण में परिवर्तन लाने से लाभ ही क्या ? हमें अपने को बदल ड़ालना चाहिये ? और यदि हमको अपने को बदलना है तो हमें परिवर्तन की इस प्रक्रिया को पहले उन संस्थाओं से प्रारम्भ करना है जो विद्यार्थियों की पूर्ति करती है ।[1]

राधाकृष्णन कहते हैं कि यदि हम अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान

1- 'गुजरात विश्वविद्यालय में दीक्षान्त - भाषण' 8 अक्टूबर.1955

करना चाहते हैं तो हमें विद्यार्थियों को वे सभी आवश्यक सुविधाएं प्रदान करनी होंगी जिनकी उनको आवश्यकता है । अच्छे अनुशासन के लिये विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं :

1- भय और सन्देह के वातावरण में रहने की अपेक्षा पारस्परिक विश्वास के वातावरण में रहने के लिये विद्यालय में आत्म सम्मान और आत्म विश्वास विकसित करने के प्रयत्न किये जाने चाहियें ।[1]

2- शिक्षा संस्थाओं में विद्यार्थी स्वशासन को प्रभावशाली ढ़ंग से लागू किया जाना चाहिये । विद्यार्थियों राजनीतिक दलबन्दी में भाग लेने की अपेक्षा अपनी शिक्षा संस्थाओं के प्रशासन में सक्रिय भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये ।[2]

3- विद्यार्थियों की संख्या शिक्षकों की संख्या के अनुपात में बहुत अधिक नहीं होनी चाहिये ।[3]

4- विद्यार्थियों का चयन इस प्रकार से किया जाना चाहिये जिससे अयोग्य और अवांछनीय तत्वों को शिक्षा संस्थाओं से दूर रखा जा सके ।[4]

1-'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार, द्वारा प्रकाशित नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 381

2- वही, पृष्ठ 382

3- वही, पृष्ठ 382

4- वही, पृष्ठ 382

5- सहकारी जीवन के लिये विद्यार्थियों को सभी प्रकार की सुविधायें उपलब्ध करायी जानी चाहिये ।[1]

6- छात्रावासों में न रहने वाले विद्यार्थियों को मनोरंजन, प्रकाश, खेलकूद और सामाजिक जीवन की सुविधायें अधिक से अधिक उपलब्ध करायी जानी चाहियें । [2]

7- विद्यार्थियों को अधिकाधिक और उत्तम पुस्तकें उपलब्ध करायी जानी चाहियें । [3]

8- विद्यार्थियों में अनुशासन और अच्छी आदतें विकसित करने में एन0सी0सी0 बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है । [4]अतः सभी शिक्षण संस्थाओं में एन0सी0सी0 का संगठन किया जाना चाहिये ।

9- विचार विमर्श, वाद-विवाद, संगोष्ठी के माध्यम से विद्यार्थियों में उदार चिन्तन उत्पन्न किया जाना चाहिये । [5]

10- जहाँ विद्यार्थी अत्यधिक शैक्षिक और प्रयोगात्मक कार्य में व्यस्त रहते हैं वहां अनुशासनहीनता की कोई समस्या नहीं होती लेकिन जहां यह व्यवस्तता कम होती है वहाँ

1- 'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49 भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 382

2- वही, पृष्ठ 382

3- वही, पृष्ठ 384

4- वही, पृष्ठ 384

5- वही, पृष्ठ 384

विद्यार्थियों को व्यस्त और सक्रिय रखने के लिये अधिकाधिक साधन जुटाये जाने चाहिये ।[1]

11- उत्तम व्यवहार आदर्श चरित्र और श्रेष्ठ मूल्यों को विकसित करने के लिये सर्वोत्तम उपाय शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होने चाहिये ।[2]

12- विद्यार्थियों में श्रेष्ठ जीवन और उच्च आदर्शों का विकास करने के लिये शिक्षकों, अभिभावकों, राजनीतिक नेताओं , जनता और प्रेस को सम्मिलित रूप से प्रयत्न करने चाहिये क्योंकि यह एक सामूहिक कार्य है, जिसमें देश के प्रत्येक नागरिक के सहयोग और समर्थन की आवश्यकता है ।[3]

1- 'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 384

2- वही, पृष्ठ 384

3- वही, पृष्ठ 385